

* धर्मः स्वनुष्ठितः पुसां विष्वकूर्सेन कथामुयः /

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।



* नोत्पादयेद् यदि रति श्रम एव हि कैवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । | सब धर्मोंका अनुष्ठान करते जीव निरन्तर भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ | किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थं सभी केवल वंचनका

वर्ष १६

गौराब्द ४८४, मास—गोविन्द ३, वार—क्षीरोदशायी
शनिवार ३० माघ, सम्वत् २०२७, १३ फरवरी १८७१

संख्या :

फरवरी १८७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीब्रह्मणाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।१४।१—४०)

(गताङ्क, पृष्ठ १६३ से आगे)

अहोऽतिधन्या व्रजगोपरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।

यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्येऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

हे विभो ! आज तक समस्त यज्ञ भी आपके तृप्ति-साधनमें समर्थ नहीं हुए; अहो ! ऐसे वे ही आपने गोवत्स और गोपबालक रूपसे आनन्दपूर्वक जिनके स्तन्यामृतका प्रचुर रूपसे पान किया है, वे व्रजकी गायें और गोपरमणियाँ धन्य हैं ॥ ३१ ॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपद्रजौकसाम् ।

यन्मत्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

परमानन्दस्वरूप पूर्णब्रह्म सनातन पुरुष जिनके प्रिय मित्र हैं, ऐसे नन्दगोप आदि द्रजवासी अत्यन्त धन्य हैं और उनका अत्यन्त अहोभाग्य है ॥३२॥

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।

एतद् धृषीकचषकैरसकृत् पिदामः शर्वादियोऽङ्ग-इयुदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥

हे अच्युत ! इन द्रजके गोप, गोपी, और गोओंके सौभाग्यकी महिमा तो दूर रहे, एकादश इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवता चन्द्र आदिका एवं मेरा महान् सौभाग्य है, क्योंकि हम लोग इन्द्रियरूप पात्र द्वारा निरन्तर आपके पादपद्मके मधुस्वरूप अमृतरूपी मंदिराका पान कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां

यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्ग-प्रिरजोभिषेकम् ।

यज्जीवितं निखिलं भगवान् मुकुन्द-

स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

अभी तक श्रुतियाँ जिनके पदरजका अन्वेषण कर रही हैं, वे भगवान् मुकुन्द जिनके जीवन और प्राणसर्वस्व हैं, उन गोकुलवासियोंमें से किसी की भी पदधूलिसे अभिषेक योग्य इस भौम द्रज-विधिनमें अथवा गोकुलमें जो कोई भी जन्म प्राप्त हो, वह महान् सौभाग्य से ही होता है ॥ ३४ ॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् कि देव रातेति न-

इचेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययत् मुहृति ।

सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता

यद्वामार्थसुहृत्प्रियात्मतनय-प्राणाशयास्त्वत्कुते ॥३५॥

हे देव ! पूतना साधुचरित्रका अनुकरण मात्र कर अधासुर आदियोंके साथ संवश आपको प्राप्त हुई थी; किन्तु जिनके गृह-धन-सुहृत, अपने प्रिय द्रव्य, देह-प्राण-मन-पुत्र आदि आपकी प्रसन्नताके लिए समर्पित हैं, ऐसे इन द्रजवासियोंके लिए आप क्या प्रदान करेंगे ? सर्वफलात्मक आपसे उत्कृष्ट फल और कहाँ है ? यह विचार कर हम लोगोंका चित्त मोहयस्त हो रहा है ॥ ३५ ॥

तावद् रागादयः स्तेनास्तावद् काराणृहं गृहम् ।

तावन्मोहोऽङ्ग-प्रिनिगड़ो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

हे कृष्ण ! जब तक मनुष्य आपके प्रति अनुरागी नहीं होते, तब तक रागादि चौर का कायं करते हैं, गृह कारागार स्वरूप होता है और मोह पादशृङ्खल स्वरूप होता है ॥ ३६ ॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।

प्रपञ्चजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥ ३७ ॥

हे विभो ! आप प्रपञ्चातीत होकर भी शरणागत भक्तोंको आनन्दराशिको बढ़ाने के लिए प्रापञ्चिक लीलाका अभिनय करते हैं ॥ ३७ ॥

जानन्त एव जानन्तु कि बहुकृत्या न मे प्रभो ।

मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥

हे प्रभो ! मेरे लिए वाक्याडम्बरका क्या प्रयोजन है ? जो सभी पण्डिनाभिमानी व्यक्ति आपकी महिमाको जानते हैं—ऐसे अभिमानसे युक्त हैं, वे आपको महिमाको जानें, किन्तु आपकी महिमा एवं वैभव मेरे कायमनोवाक्यसे अगोचर है ॥ ३८ ॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।

त्वमेव जगतां नाथ जगदेतत्त्वापितम् ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! आप मुझे जानेकी अनुमति प्रदान करें । आप सर्वदर्शी होनेके कारण सब कुछ जानते हैं । आप जगतके ईश्वर हैं अतएव मैं ममतास्पद यह विश्व और अपना यह शरीर आपके निकट अपर्ण कर रहा हूँ ॥ ३९ ॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्षमानिर्जरद्विजपश्चदधिवृद्धिकारिन् ।

उद्गमशार्वरहर क्षितिराक्षसध्युगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

हे कृष्ण ! आप वृष्णिवंशरूप कमलके आनन्ददायक सूर्य हैं और भूमि, देव, द्विज, और पशुगण रूपी समुद्रके वृद्धि करनेवाले चन्द्रदेव हैं । आप पाषण्ड धर्मरूप नैशान्धकारका नाश एवं पृथिवीमें स्थित राक्षसतुल्य व्यक्तियोंके प्रति विद्रोह करते हैं । हे भगवन् ! सूर्यादि सभी वस्तुओंके पूजनीय आपको आकल्य अर्थात् जब तक जीवित रहूँ, तब तक प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीब्रह्मणाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीब्रह्माजी द्वारा कृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

श्रीरूपानुगत्यकी आवश्यकता क्यों है ?

श्रीरूप-सनातनके लीलास्मरण और उद्दीपना द्वारा जीवोंको परम सद्गति प्राप्त होती है। श्रीरूप-सनातन प्रभु हमारे तरह शुक-शोणित द्वारा उत्पन्न जडपिण्ड नहीं हैं; उन्होंने जो पाण्डित्य और विशेषत्व जगतमें प्रदर्शन किया है, हम अपने स्थूल ज्ञान द्वारा उनकी उपलब्धि करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे। जागतिक ऊच-नीच विचारसे उन्हें देखने पर हम उनके स्वरूप-दर्शन-लाभसे बंचित होंगे। जागतिक विचारके उच्च कार्य हम श्रीरूप-सनातनमें देख नहीं पायेंगे। जिनका चित्त वैसे कार्य या चिन्तास्रोतमें अभिनिविष्ट है, वे श्रीरूप एवं श्रीसनातन प्रभुकी पदनखशोभा दर्शन नहीं कर सकेंगे। श्रीरूप-सनातन प्रभुद्वय श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभिष्टपूरक हैं। श्रीमन्महाप्रभुके प्रति जैसी भक्ति होनी चाहिए, उससे थोड़ा भी कम मात्रामें श्रीरूप-सनातन और श्रीजीवके प्रति पोषण करने पर हमें भक्तिमें अधिकार नहीं मिलेगा। श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीरूप-सनातन प्रभु अभिन्न हैं। श्रीरूप गोस्वामीको गुरुरूपसे वरण करनेके बदलेमें और किसी को वरण करने पर श्रीसनातन रूपका दर्शन नहीं कर सकेंगे।

श्रीचैतन्यमें कैसी भक्ति होनी चाहिए या आत्मा की कैसी निर्मल भक्ति होनी चाहिए, यह भक्ति श्रीरूप गोस्वामीमें देखी जाती है। श्रीरूप-सनातन-जीव प्रभुत्रय पढ़ गोस्वामियों में से तीन गोस्वामी हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभुके

वाहन स्वरूप हैं। पढ़ गोस्वामियोंमें श्रीरूप गोस्वामीका नाम ही सर्वप्रथम है। जिस स्थानमें श्रीरूप गोस्वामीका पादविक्षेप हुआ है, वह स्थान ब्रह्मादिके लिए दुर्लभ है। हम लोग साधारण जीव होकर उस चिन्मय रज को हमारे मस्तकमें धारण करनेकी दुराशाका पोषण कर रहे हैं। श्रीरूप गोस्वामीके पादपद्मोंमें हम लोग जो ऋणसे ऋणी हैं, उसके शतांशमें से एकांश भी हम लोग अनन्त कोटि जीवनमें भी शोध कर नहीं सकेंगे। श्रीरूप गोस्वामी प्रभुका 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' भक्तिकी दिशा निरूपण करनेवाला यत्रविशेष है। श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती-पादने कहा है—

"स्त्रीपुत्राविकथां जहुविषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधाः
योगीन्द्राविजहुमंहनियमजं व्येदां तपस्तापसाः ।
शास्त्राभ्यासविद्यि जहुश्चयतयश्चैतन्यचन्द्रे परां
आविष्कुर्वति भक्तियोगपदबीं नैवान्यत् आसीद्रसः ।"

जिस समय श्रीचैतन्यदेव जगतमें अवतीर्ण हुए थे, उस समय विषयी लोगोंने स्त्रीपुत्रादि की बात परित्याग कर हरिकथा का प्रचुर ध्वनि किया था। प्रतापरुद्र जैसे विषयी राजाओंने भी श्रीचैतन्यचरणाश्रय ग्रहण किया था। काशीवासी साठ हजार संन्यासी एवं उनके गुरु श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीने तुच्छ जानकर ज्ञानाभ्यासका परिपूर्णसे परित्याग कर दिया था।

श्रीगीरनित्यानन्द-अद्वैत-गदावर आदिके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीनिवासाचार्य, श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील इयामानन्द प्रभु—इन प्रभुत्रयके शुद्ध भक्ति-प्रचार द्वारा जगतके अनेकानेक जीवोंका मङ्गल हुआ था। ईसाई प्रचारकी अपेक्षा श्रील नरोत्तम ठाकुरकी प्रार्थना और प्रेमभक्तिचन्द्रिकाका प्रचार अत्यधिक अधिक है। श्रीरूप गोस्वामीजीके एकान्त किकर होनेके कारण ही श्रील नरोत्तम ठाकुरने ऐसी शक्ति प्राप्त की थी। उन्होंने गाया है—

“रूप रघुनाथ पदे हइवे आकृति ।
कवे हाम बुझब से युगल विरीति ॥”

जब तक हमारे अन्दर कीचड़-जल-मिट्टी युक्त बुद्धि वर्तमान है, तब तक राधाकृष्णकी रसकेनिका विषय हूदयज्ञम नहीं हो सकता। आत्मानुभूति होने तक वृन्दावनका प्रवेश द्वार बन्द रहता है। वृन्दावनमें प्रविष्ट होने पर श्रीरूपरघुनाथका आनुगत्य छोड़कर और दूसरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। जिस प्रकार प्राणहीन देहका कोई मूल्य नहीं है, उसी प्रकार श्रीरूपानुगत्यके बिना जीव स्वरूपकी कोई सार्थकता नहीं है। यदि श्रीगीरनित्यानन्दका माधुर्योदाय उपलब्ध करनेकी इच्छा हो, तो रूपानुग जनोंका आनुगत्य करना होगा। श्रीरूप गोस्वामीके आनुगत्यके बिना युगलसेवाका अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। श्रीवृन्दावनमें गोविन्दजीकी सेवा श्रीरूप गोस्वामीजीका है—

“बीच्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः
श्रीमद्रस्तनागारसिहासनस्थी ।
श्रीश्रीराधा-श्रील-गोविन्ददेवौ
प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानो स्मरामि ॥”

गोड़ीयोंके सेव्य तीन विग्रह हैं— मदनमोहन, गोविन्द और गोपीनाथ। अष्टादशाक्षरीय मन्त्रमें ये तीनों नाम उल्लिखित हैं। कृष्ण ही मदनमोहन हैं, गोविन्द ही गोविन्द हैं एवं गोपीजनवल्लभ ही गोपीनाथ हैं। मदनमोहन-कृष्णानुभव ही सम्बन्ध है, गोविन्द-सेवा ही अभिधेय है, गोपीजनवल्लभ द्वारा आकर्षण ही प्रयोजन है। श्रीसनातन प्रभुद्वारा मदनमोहनके साथ जीवजा सम्बन्ध स्थापित कर देने पर श्रीरूप प्रभुके आनुगत्यमें जीवोंको गोविन्द सेवामें अधिकार प्राप्त होता है।

‘मा प्रेक्षिष्ठस्तव यदि सते बन्धुसङ्गेऽस्तिरङ्गः ।’

श्रीरूप गोस्वामीके पादपद्म-आश्रय करने की इच्छा हो, तो श्रीरूप पदाञ्जलि भूमिमें लोटपोट होनेसे ही सर्वार्थसिद्धि होगी। श्रीसनातन गोस्वामीकी महिमा वैष्णव कवि करांपूर महोदयने ऐसी भाषामें वर्णनाकी है— गौडेन्द्रस्य समाविभूषणमणिस्त्यक्त्वा य ऋद्धां विष्यं रूपस्याग्रज एष एव तरुणी वैराग्यलक्ष्मी दधे। अत्मंक्तिरसेन पूर्णद्वयोवाह्ये ऽवदूताकृतिः शैवालैः पिहितं महासर इव प्रीतिप्रदस्तद्विदाम् ॥

—श्रीसंतन्यचन्द्रोदय नाटक ६।३४

महावदान्यलोलामय चंतन्यचन्द्रकी श्रीरूप-प्रभुने इस प्रकारसे बन्दना की है—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचंतन्य नाम्ने गौरत्विष्ये नमः ॥

कृष्णप्रेमका अर्थ कृष्णकी प्रसन्नता है। सेवकोंके निकटसे वे जो चाढ़ते हैं, उसका ही बोध होता है।

गया धाममें गदाधरके पादपद्मोंने आसुरिक कमंकाण्ड और बीढ़युगके ज्ञानकाण्डको ढक दिया है। उसी पीठका दर्शन करनेके पश्चात्

श्रीगौरसुन्दरने किसीको भी और दूसरी कोई बात नहीं कही। उन्होंने सभी जीवोंका आह्वान कर यह कहा है—

“जारे देल तारे कह कृष्ण-उपदेश ।
आमार आज्ञाय गुरु हइया तार एइ देश ॥”

उन्होंने प्रत्येक व्यक्तिको प्रचारक होनेके लिए कहा है। स्वार्थपर व्यक्ति ऐसी बात नहीं कह सकते। महावदान्य महाप्रभुको छोड़कर और कोई भी जीवको सर्वश्रेष्ठ पदमें आरोहण करानेके अभिलाषी नहीं होते। जागतिक लोग स्वार्थपर हैं। वे अन्यान्य जीवोंको सर्वदा निष्पेषित कर अपनी अधीनतामें रखनेका प्रयास करते हैं। उनमेंसे कोई कोई थोड़ी सी उदारताका नाटक रचकर नीच व्यक्तिको अपेक्षाकृत ऊँची पदवीका आयाभासका लोभ दिखलाकर व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रतिष्ठा-संग्रह करनेका प्रयत्न करते हैं। श्रीमद् भगवद्गीतामें जो समदर्शित्वकी बात कही गई है, उसको अपेक्षा भी श्रीगौरसुन्दरकी महावदान्यता कोटि कोटि गुणोंमें अधिक है। उन्होंने ‘कौने को गरु’ बनाया है। विषयी, पतित जीवको गोलोक का परमोत्कृष्ट नित्य शोभा सम्पद प्रदान किया है। उन्होंने सभी जीवोंको कीर्तनका अधिकार प्रदान किया है।

कीर्तनकारीका आसन ग्रहण करनेपर हममें अभिमान आ सकता है, इसलिए उन्होंने कीर्तन करनेकी प्रणाली बतला दी है। ‘तृणादपि सुनीच’ नहीं होनेसे हरिकथाकी कीर्तन नहीं हो सकता, कोई उसे नहीं सुनते। गुरुके लक्षण विचारसे उन्होंने कहा है—

“तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥”

जो सर्वदा हरिकीर्तन करते हैं, वे ही श्रीगुरुदेव हैं। श्रीगुरुके लिए एक मृहर्ता भी हरिकीर्तनको छोड़कर और कोई दूसरा कर्य नहीं है। हरिकीर्तन और मायाका कीर्तन एक साथ नहीं हो सकता। जो लोग माया अर्थात् इन्द्रियतर्पणका कीर्तन करते हैं, समय-समय पर कृष्णकीर्तनकी छलना प्रदर्शन करते हैं, उनका यह दिखावटी कृष्ण कीर्तन भी इन्द्रियतर्पण या मायाका कीर्तन मात्र है। जो व्यक्ति कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाके लिए बहुत लालायित है, वे ‘तृणादपि सुनीच’ नहीं हैं। जो व्यक्ति जगत्-को भाग्य समझते हैं, जगत्के प्रत्येक वस्तुको जो कृष्णसेवामें नियुक्त करनेका कौशल नहीं जानते, उनमें कोई सहिष्णुता नहीं है, वे धर्यहीन हैं। स्वयं ही ‘कृष्ण’ सजनेके लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं। जो व्यक्ति जगत्के प्रत्येक जीवको गुरु नहीं कर सकते, प्रत्येक वस्तुको गुरु रूपसे दर्शन करने असमर्थ हैं, प्रत्येक जीवको कृष्ण कीर्तनमें अधिकार प्रदान करनेसे कुण्ठित हैं, प्रत्येक जीवको आचार्य-पदकी योग्यता प्रदान करनेमें कुण्ठित होते हैं, वे ‘अमानी’ और ‘मानद’ नहीं हैं। इसलिए जो सर्व प्रकारके व्यवधानरहित शुद्ध हरिकीर्तन सर्वदा करते हैं, वे ही श्रीगुरुदेव हैं। श्रीगौरसुन्दर, श्रीसनातन-रूप-जीव प्रभुत्रय, श्रीहरिदास ठाकुर आदि आचार्यवग्नि ऐसे गुरुदेवका आदर्श ही प्रदर्शन किया है। उच्च स्वरसे हरिनाम परोपकारकी पराकाष्ठा है। स्वार्थपर व्यक्ति ध्यानयोगादि प्रणाली ग्रहण करते हैं। ऐसी प्राकृत चेष्टा द्वारा

जीवोंका परम प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । निरन्तर एक मूहूर्त कालको भी नष्टन कर हरिकथा कीर्तन करने पर ही जीव सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त कर सकते हैं । हम लोग कई समय मायाके कीर्तनको ही 'हरिकीर्तन' समझ बैठते हैं । उसके द्वारा भगवान् श्रीहरि कीर्तित नहीं होते केवल आभिधानिक शब्दका ही कीर्तन होता है । जिस प्रकार घोड़ा कहनेसे हम लोग घोड़ेके चेहरेकी चिन्ता करते हैं उसी प्रकार हरि कहने पर भी एक प्राकृत रूपकी ही चिन्ता कर बैठते हैं । वह प्राकृत चेष्टा या पौत्रालिकताको छोड़कर और कुछ भी नहीं है । जब नाम-नामी अभिन्न जानकर कृष्णन्दिय प्रीतिके लिए हम लोग हरिजनों या भक्तोंके आनुगत्यमें हरिकीर्तन करें तब ही वेकुण्ठ-कीर्तन होता है । भगवान् ने यह अधिकार सुरक्षित रखा है कि सभी भोग्य वस्तुओंको तरह वे भोग्य वस्तु न होनेके कारण जीव उन्हें चक्षु कर्ण, या मन आदि इन्द्रियोंद्वारा भोग (माप) नहीं सकते । श्रुतियोंने 'अपाणिपादः' मन्त्रमें यही बात कीर्तन किया है ।

इन्द्रियतर्पण और भगवज्ञान—ये दोनों वस्तुएँ दो विपरीत दिशाओंमें वर्तमान हैं । इन्द्रियग्राहाविषय भोगकी वस्तु है । रावण की तरह कोई व्यवित भगवच्छन्नितको हरण करनेकी इच्छा रख सकता है, किन्तु सीतादेवी भगवान् रामचन्द्रजीकी भोग्या होने पर भी राक्षस रावणकी भोग्या नहीं हैं । 'सर्व वासुदेवमयं जगत्' 'ईशावास्यमिदं सर्वं'— यह बुद्धि रहने पर भगवान्को माप लेनेकी दुर्बुद्धि हममें नहीं रह सकती । हम लोग

कई समय यह सोचते हैं कि भगवान्ने हमें दुःखमें क्यों रखा है? किन्तु इसके बदले भगवान् ने हमें दूसरी प्रकारकी शिक्षा दी है—

तत्त्वनुकम्पा सुसमीक्षमाणो

भुज्ञान एवात्मकृतं विपाकम् ।
ददाग्वपुभिर्विद्धन्नमस्ते जीवेत

यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

अर्थात् हे भगवन्! जो व्यक्ति आपकी अनुकम्पाकी प्राप्ति-आशासे अपने कर्मोंका भला-बुद्धि फल भोग करते-करते मन वाक्य और शरीर द्वारा आपकी भक्ति करते हुए जीवन निर्वाह करते हैं वे अनायास ही मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं । दुःख नहीं रहनेसे भगवत् स्मरण नहीं होता । जागतिक दुःख ही उनकी दशा है । खिलीने द्वारा जिस प्रकार पितामाता बालकोंको भुलाये रखते हैं उसी प्रकार माया शक्ति भी हमें धनजन और जागतिक सुखादि प्रदान कर भगवत् पादपद्मोंसे दूर रखती हैं । जगत्के चाकचिक्य या चमत्कारितामें भूलकर पृथिवीकी उच्चति के लिए अभ्युदयवारी कर्मी होनेसे मनुष्य जीवनका उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता । श्रीरूप-सनातन-जीव प्रभुत्वने हम जैसे मूढ़ जीवोंको शिक्षा देनेके लिए ही विषय-परित्याग लीलाभिन्न किया था । वास्तवमें वे लोग प्राकृत जीवोंकी तरह या साधन-सिद्ध भक्तोंकी तरह पहले विषयासक्त अदिव्यज्ञानयुक्त व्यक्ति नहीं थे । वे लोग नित्यसिद्ध व्रजपरिकर हैं । किसी भी समय उनमें दिव्य ज्ञानका अभाव नहीं है । वे

कृष्णप्रेष्ठ हैं। हम लोग इन प्रभुत्रयकी लिए आये हुए हैं। धामवासी व्यक्ति हमपर लीलाभूमि पूतरजमें अभिविक्त होनेके कृपा वितरण करें।

वांद्याकल्पतरुम्यश्च कृपासिन्धुम्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

—जगद्गुरु श्री विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर (आत्मधर्म)

१—नित्य और नैमित्तिक धर्म किसे कहते हैं ? निसर्ग क्या है ?

“जिस वस्तुका जो नित्य स्वभाव है, वही उसका धर्म है। वस्तुके गठनसे स्वभावका उदय होता है। कृष्णकी इच्छासे जब कोई वस्तु गठित होती है, तब उस गठनके नित्य सहचर रूपसे एक स्वभावका उदय होता है। वह स्वभाव ही उस वस्तुका नित्य धर्म है। पश्चात् जब कोई घटनावशतः या अन्य वस्तुके साथ उस वस्तुका कोई विकार होता है, तब उसका स्वभाव भी विकृत या परिवर्तित होता है। परिवर्तित स्वभाव कुछ दिनोंमें टृढ़ होनेपर नित्य स्वभावकी तरह संगी हो पड़ता है। यह परिवर्तित स्वभाव ‘स्वभाव’ नहीं है; इसे ही ‘निसर्ग’ कहते हैं। निसर्ग स्वभावके स्थलमें रहकर अपनेको ‘स्वभाव’ के रूपमें परिचय प्रदान करता है। उदाहरणके लिए ‘जल’ एक वस्तु है, तारल्य ही उसका स्वभाव है। घटनावशतः जल जब बर्फ हो जाता है तब काठिन्य उसका निसर्ग होकर स्वभावकी तरह कार्य करता है। वस्तुतः निसर्ग नित्य नहीं है, वह नैमित्तिक

मात्र है। क्योंकि किसी निमित्तसे उसका उदय होता है एवं वह निमित्त विद्विरित होने पर वह स्वयं दूर हो जाता है। किन्तु स्वभाव नित्य है। विकृत होने पर भी वह अनुस्युत रहता है। काल एवं घटनाक्रमसे स्वभाव अवश्य हो अपना परिचय प्रदान कर सकता है। वस्तुका स्वभाव ही वस्तुका नित्य धर्म है, वस्तुका निसर्ग ही नैमित्तिक धर्म है।”

— ज० घ० १ म अ०

२—जीवका नित्य धर्म क्या है ?

“कृष्ण वृहच्चिदवस्तु हैं, जीव अणुचिद-वस्तु है। चिद् धर्ममें दोनोंकी समानता है। किन्तु पूर्णता और अपूर्णता भेदसे दोनोंका स्वभाव-भेद अवश्य ही सिद्ध होता है। कृष्ण जीवके नित्य प्रभु हैं, जीव कृष्णका नित्यदास है। यह बात स्वाभाविक रूपसे ही सिद्ध है। कृष्ण आकर्षक हैं, जीव आकृष्ट है। कृष्ण ईश्वर हैं, जीव ईशितव्य है। कृष्ण द्रष्टा हैं, जीव दृष्ट है। कृष्ण पूर्ण हैं, जीव दीन और क्षुद हैं। कृष्ण सर्वशति-मान हैं, जीव निःशक्ति-क हैं। अतएव कृष्णका नित्य

आनुगत्य या दास्य ही जीवका नित्य स्वभाव या धर्म है।

× × × ×

प्रेम ही जीवका नित्य धर्म है, जीव अजड़ अर्थात् जड़तीत वस्तु है। चैतन्य ही इसका गठन है। प्रेम ही इसका धर्म है। कृष्णदास्य ही वह विमल प्रेम है। अतएव कृष्णदास्यरूप प्रेम ही जीवका स्वरूप धर्म है।”

— जै० ध० १ म अ०, २ य अ०

३—वैष्णव-धर्म नित्य क्यों है?

“श्रीमद्भागवत शास्त्रमें जो विशुद्ध वैष्णव-धर्म देखा जाता है, वह नित्य धर्म है। जगतमें जितने भी प्रकारके धर्म हैं, उन सभी धर्मोंको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—नित्य-धर्म, नैमित्तिक-धर्म और अनित्य-धर्म। जिन सभी धर्मोंमें ईश्वरकी आलोचना नहीं है और आत्माकी नित्यता नहीं है, वे सभी ही अनित्य-धर्म हैं। जिन सभी धर्मोंमें ईश्वर और आत्माकी नित्यता स्वीकार को गठ है, किन्तु केवल अनित्य उपाय द्वारा ईश्वर-प्रसाद प्राप्त करनेकी चेष्टा की गई है, वे सभी धर्म ही नैमित्तिक हैं। जिसमें विमल प्रेम द्वारा कृष्णदास्य प्राप्त करनेका प्रयास किया गया है, वह धर्म ही नित्य है। नित्य-धर्म देश-भेदसे, जाति-भेदसे, भाषा-भेदसे पृथक् पृथक् नामोंसे परिचित होनेपर भी वह एक और परम उपादेय है। भारतमें जो वैष्णव-धर्म प्रचलित है, वही नित्य-धर्मका आदर्श है। हमारे हृदयनाथ भगवान् शशीनन्दन गौरा झट्ठेवने जिस धर्मकी शिक्षा जगत्को दी है, वही वैष्णव-धर्मकी विमल अवस्था है, ऐसा प्रेमानन्दी महाजन लोग

स्वीकार करते हुए उसीका अवलम्बन करते हैं।”

— जै० ध० २ रा अ०

४—कौन धर्म यथार्थ धर्म-पद वाच्य है?

“विष्णु-न्यैम जिस धर्मका उद्दिष्ट उत्तर है, वह धर्म ही ‘धर्म’ है।”

चै० शि० १। १

५—धर्म क्या एक है?

“मानव लोगोंका धर्म कदापि बहुत प्रकारका हो नहीं सकता। जो धर्म मानवोंके लिए नित्य है, वह उत्तरकेन्द्र और दक्षिण केन्द्र आदि भेदसे कदापि पृथक् पृथक् नहीं हो सकता। मूलमें नित्य-धर्म एक ही है, दो नहीं।”

—श्रीम० शि० १ म प०

६—नित्य-धर्म एक है या बहुत है?

“धर्म एक ही है, दो या बहुत नहीं है। जीव मात्रका ही एक धर्म है। उस धर्मका नाम वैष्णव-धर्म है। भाषा-भेदसे, देशभेदसे और जाति-भेदसे धर्म भिन्न भिन्न नहीं हो सकता। बहुतसे व्यक्ति जैव-धर्मको नाना प्रकारके नामोंसे बतलाते हैं। किन्तु वे लोग पृथक् धर्मकी सृष्टि नहीं कर सकते। परम वस्तुके प्रति अणु वस्तुका जो निर्मल चिन्मय प्रेम है, वह जैव-धर्म है अर्थात् जैव-सम्बन्धीय धर्म है। सभी जीव नाना प्रकारके स्वभावसे युक्त होनेके कारण जैव-धर्म कुछ प्राकृत आकारों द्वारा विकृत रूपसे देखा जाता है। इसलिए वैष्णव-धर्म नाम देकर जैव-धर्मकी शुद्धावस्थाको बतलाया गया है। अन्यान्य धर्मोंमें जिस परिमाणमें वैष्णव-धर्म है, उसी परिमाणमें ही वे धर्म शुद्ध हैं।”

—जै० ध० २ रा अ०

७—शुद्ध वैष्णव-धर्म क्या है ?

“जगतमें वैष्णव-धर्मके नामसे दो पृथक् धर्म चल रहे हैं; एक तो शुद्ध वैष्णव-धर्म है, और दूसरा विद्व वैष्णव-धर्म है। शुद्ध वैष्णव धर्म तत्त्वतः एक होने पर भी रसभेदसे चार प्रकारका है—अर्थात् दास्यगत वैष्णव-धर्म, सह्यगत वैष्णव-धर्म, वात्सल्यगत वैष्णव-धर्म, और मधुर रसगत वैष्णव-धर्म। वस्तुतः शुद्ध वैष्णव धर्म एक और अद्वितीय है, इसका दूसरा नाम नित्य-धर्म या पर-धर्म है। “यज् जाते सर्वं विजातं भवति”—इस अति वाक्य द्वारा शुद्ध वैष्णव-धर्मको लक्ष्य किया गया है।”

—जौ० ध० ४ थं अ०

८—एकमात्र भागवत-धर्म ही नित्य-धर्म क्यों है ?

“भागवत-प्रवृत्ति द्वारा शुद्ध सविशेष भगवत्स्वरूपानुगत भक्तितत्त्वमें समस्त भाश्य-वान जीवोंकी रुचि होती है। ये लोग जो भगवदाराधनादि करते हैं, वे सभी क्रियाएँ कर्म या ज्ञानाङ्ग नहीं हैं, शुद्धभक्तिके अङ्ग हैं। इस मतका वैष्णवधर्म ही शुद्ध वैष्णव-धर्म है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

वदन्ति “तत्त्वविदस्त्व” यज् ज्ञानमद्वयम् ।
महोति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ॥

(भा० १। २। ११)

ब्रह्म-परमात्माभिन्न भगवत्तत्त्व ही समस्त तत्त्वोंका चरम है। भगवत्तत्त्व ही विष्णुतत्त्व है एवं उस तत्त्वके अनुगत जीव ही शुद्ध जीव हैं। उनकी शुद्ध प्रवृत्तिका नाम भक्ति है। हरिभक्ति ही शुद्ध वैष्णव-धर्म,

नित्य-धर्म, जैवधर्म, भागवत-धर्म, परमार्थ-धर्म, पर-धर्मके रूपमें विख्यात है। ब्राह्म प्रवृत्ति एवं परमात्म-प्रवृत्तिसे जितने भी धर्म हुए हैं, वे सभी ही नैमित्तिक हैं। निविशेष ब्रह्मानुसन्धानमें निमित्त है, अतएव वह नैमित्तिक है अर्थात् नित्य नहीं है। जड़विशेषमें आबढ़ होकर जो जीव बन्धन-मोचनके लिए व्यतिव्यस्त है, वह जड़ बन्धनको निमित्त कर निविशेष गतिके अनुसन्धानरूप नैमित्तिक धर्मको आश्रय करता है। अतएव ब्राह्म-धर्म नित्य नहीं है। जो जीव समाधि-सुख-वांछासे परमात्म-धर्मका अवलम्बन करते हैं, वे भी जड़-सूक्ष्म भुक्तिको निमित्त कर तैमित्तिक-धर्मका अवलम्बन किये हुए हैं। अतएव परमात्म-धर्म भी नित्य नहीं है। केवल विशुद्ध भागवत-धर्म ही नित्य है।”

—जौ० ध० ५ थं अ०

९—धर्म क्यों बहुत प्रकारका हुआ ?

“धर्म क्यों बहुत प्रकारका हुआ ?” इसका सदुत्तर यही है कि शुद्ध अवस्थामें जीवका धर्म एक ही है। जड़बढ़ होकर जीवका धर्म दो प्रकारका हुआ है अर्थात् सोपाधिक और निरुपाधिक। धर्म कदापि देश भेदसे पृथक् नहीं होता। देश-काल-पात्र भेदसे जड़ोपाधि प्राप्त जीवकी प्रकृतिके पार्थव्य द्वारा सोपाधिक-धर्म देश-विदेश और कालभेदसे सहज ही पृथक् हो पहता है। उक्त सोपाधिक धर्म ही भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न आकार और नाम प्राप्त होता है। जीव जितना ही उपाधिसे मुक्त होता है,

उतना ही उसका धर्म निरुपाधिक अवस्थामें सभी जीवोंका ही एक नित्य-धर्म है।”

—श्रीम० शि० १५ प०

१०—जीवात्मा और परमात्माका अस्तित्व क्यों युक्ति द्वारा स्थापित नहीं हो सकता ? आत्म-प्रत्यक्ष द्वारा क्या प्रतीत होता है ?

“सत्यका लोप नहीं है, इसलिए वे लम्प्राय रहते हैं। आत्माका नित्यत्व और प्रहृष्टका अस्तित्व आदि सभी सत्य युक्तिद्वारा स्थापित नहीं हो सकते। क्योंकि प्रपञ्चातीत विषयमें यवितकी गति नहीं है। आत्म-प्रत्यक्ष ही ये सभी सत्यका एकमात्र स्थापक है। इस आत्म-प्रत्यक्ष या सहज-समाधि द्वारा जीवोंका नित्यधार्म वैकुण्ठ और नित्य क्रिया कृष्णदास्यका साधु लोग अनुभव प्राप्त करते हैं।”

—कृ० स० ६५

११—आत्माकी प्रत्यक्ष गति और पराकृ गति क्या है ?

“विषय रागको भगवद् रागरूपसे उन्नत करनेकी आशासे प्रवृत्तिकी पराकृ गति परिस्थाग और प्रत्यक्ष गतिके साधनके लिए सभी भगवदभाव विषयोंमें विमिश्त हए हैं। मनोयन्त्रके द्वारा इन्द्रियों द्वारा अतिक्रम करते हुए आत्मा जो विषयाभिमुख होकर धावमान होते हैं, उसका नाम आत्माकी पराकृ गति है। इस प्रवृत्ति स्रोतको पुनः अपने यथार्थ स्थान पर लौटाकर ले आनेका नाम प्रत्यक्ष गति है।

सुखाद्य लालसाके प्रत्यक्ष-धर्म साधनके लिए महाप्रसादके सेवनकी व्यवस्था की गई है। श्रीमूर्ति और तीर्थादिके दर्शनद्वारा दर्शन-वृत्तिका प्रत्यक्ष गमन साधित होता है। हरिलीला और भवितसूचक गीतादि श्रवण द्वारा श्रवण-प्रवृत्तिकी प्रत्यक्ष गति संभव होती है। भगवदर्पित तुलसी चन्दनादि सुगन्धिग्रहण द्वारा गन्धप्रवृत्तिकी वैकुण्ठगति सनकादियोंके चरित्रमें सिद्ध हुई है। वैष्णव-संसार समृद्धिमूलक विवाहित भगवत्पर पत्नी या पतिके संगम द्वारा स्त्री या पक्षान्तर में पुरुष-संयोग प्रवृत्ति की प्रत्यक्षगति मनु, जनक, जयदेव, पिपाजी आदि वैष्णवोंके चरित्रमें देखी जाती है। उत्सव प्रवृत्तिकी प्रत्यक्ष गतिके साधनके लिए हरिलीलो-त्सवादिका अनुष्ठान देखा जाता है। ये सभी भावान्वित नरचरित्र सर्वदा सारग्राही लोगों के पवित्र जीवनमें देखे जाते हैं।”

—कृ० स० १०११

१२—विषयराग और ब्रह्मरागमें क्या सत्ताकी भिन्नता है ?

“विषय-राग और ब्रह्म-रागमें सत्ताकी भिन्नता नहीं है, केवल विषयकी भिन्नता मात्र है। यह राग जब वैकुण्ठाभिमुख होता है, तब प्रपञ्च विषयमें राग नहीं रहता, केवल आवश्यकतानुसार उसमें प्रपञ्च स्वीकार हुआ करता है। स्वीकृत सभी विषय भी उस समय वैकुण्ठ-भावापन्न होता है। अतएव समस्त राग ही अप्राकृत हो पड़ता है।”

—कृ० स० १०१२

श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कृतिपूर्ण शास्त्रीय प्रमाण

(गताङ्कसे आगे)

—निमिराजके प्रवन करने पर नवें योगेश्वर श्रीकरभाजनजी उत्तर देते हुए अन्य युगावतारोंकी भाँति श्रीकृष्णावतारानन्तर कलियुगावतारका वर्णन करते हैं — बुद्धिमान जन कलिकालमें उन श्रीकृष्णका यजन-पूजन करते हैं जो कान्तिसे गौरवण्ठ विशिष्ट हैं। इनका गौरत्व तो 'आसन् वर्णास्त्रियो' इस श्लोककी टीकामें पारिशेष्य प्रमाणसे व्यक्त कर दिया। इस श्लोकमें श्रीकृष्णके परिपूर्णत्व रूप प्रतिपादित होनेसे युगावतारत्व है। श्रीकृष्णमें ही सब अवतारोंका अन्तर्भाव होता है। वह प्रयोजन भी उन एकमें ही सिद्ध होता है। इसी कारण जिस द्वापर युगमें प्रस्तुर्णतम पुराण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण होते हैं, उसी द्वापरके अनन्तर आनेवाले कलियुगमें ही श्रीगौरांगदेव भी अवतीर्ण होते हैं। यह बात स्वारस्यसे लब्ध होती है। अतः यह श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्णके आविर्भाव-विशेष ही हैं। उसी आविर्भावत्वको विशेषणों द्वारा स्वतः स्पष्ट करते हैं। यथा—‘कृष्णवर्ण’ अर्थात् जिनके श्री-कृष्णचैतन्य नाममें कृष्णत्व प्रकाशक ‘कृ’ ‘ष्ण’ ये दो वर्ण भी विद्यमान हैं। इस प्रकारकी व्याख्याका प्रमाण भी ‘समाहृताः’ भा. ३।३।३ इत्यादि पद्ममें “श्रियः सवर्णोन्”

की टीकामें “लक्ष्मी स्वरूपा श्रीरुक्मिणी-जीका बड़ा भाई अर्थात् रुक्मीके नाममें भी रुक्मिणीजीके नामबोधक दोनों वर्ण हैं। अथवा अपनेसे अभिन्न अपने पूणवितार श्रीकृष्णके परमानन्दमय विलासके स्मरण-से उत्पन्न उल्लासके वज्रीभूत हो स्वयं श्रीकृष्णनामका उच्च स्वरसे कीर्तन करते हैं और परम कारुणिकताके कारण समस्त जनोंके लिये ऐसा वरनेका उपदेश भी देते हैं। अथवा स्वयं गौरवर्ण होकर भी अपने श्रीविश्रृक्तीकी शोभासे ही श्रीकृष्ण-भजनका उपदेश देते हैं। तात्पर्य यह है कि—जिनके दर्शनमात्रसे ही सबको श्री-कृष्णकी स्फूर्ति होने लगती है। अथवा सर्व-साधारण लोगोंकी हृषिमें गौरवर्णसे दीखते हुए भी भक्तविशेषकी हृषिमें “त्विषा” अर्थात् प्रकाश-विशेषसे कृष्णवर्ण विशिष्ट वैसे ही श्यामसुन्दर रूपमें विराजमान दीखते हैं। अतः श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्णके आविर्भाव-विशेष ही हैं, यह भावार्थ है।

श्रीगौरांगदेवकी भगवत्ताको स्पष्ट करते हैं। यथा—उनके समस्त अंग ही परम मनोहर होनेके कारण वे ही भूषण स्वरूप हैं, अर्थात् भूषणोंसे उनके श्रीअंगकी शोभा नहीं बढ़ती, अपितु उनके श्रीअंगमें आनेसे

भूषणोंकी ही शोभा बढ़ जाती है और महाप्रभावशाली होनेसे वे श्रीअंग ही दूसरोंको वशीभूत करनेके अस्त्र हैं। सर्वदा समीप रहने के कारण वे ही पाषंद-विशेष हैं, और तत्समकालीन बहुतसे महानुभावोंने उनके श्रावणगमें रामकृष्णादि स्वरूपोंका दर्शन भी कई बार किया था। गौड़-वरेन्द्र-बंग-उत्कल आदि देशोंके निवासियोंकी यह बात विशेष-प्रसिद्ध है, अथवा अत्यन्त प्रेमास्पद होनेसे उनके तुल्य ही जो महानुभाव श्रीअद्वैताचार्य प्रभृति पाषंदगण हैं, उनके साथ वर्तमान रहे हैं, यह भी अर्थ व्यक्त है।

पूर्वोक्त गुणविशिष्ट श्रीगौरांगदेवका यजन किस प्रकारकी पूजा सामग्रियोंसे होता है? वहाँ कहते हैं कि—सब भक्तजन प्रेमपूर्वक मिलकर ताल-लय सहित उच्च स्वरसे मधुरतापूर्वक श्रीभगवन्नाम-संकोर्तनप्राय यज्ञोंसे उनका यजन (पूजन) करते हैं, अर्थात् संकोर्तन ही कलियुग का प्रधान धम है और उसका विकाश भी प्रायः श्रीगौरचरणाधितजनोंमें ही अधिक मात्रामें देखा जाता है। अतएव श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमें उनके अवतारसूचक नामोंका भी कथन इस प्रकार है—“सुवर्णवण्ठौ हेमांगो वरांश्चगदनांगदी। संन्यासकृच्छ्रमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्” ॥ (महाभारतीय अनुशासनपर्व दानधर्मपर्व विष्णुसहस्रनामस्तोत्र, अध्याय १६६, श्लोक ६२ एवं ६५) इन नामोंका अर्थ पूर्णरूपेण श्रीगौरांगदेवमें ही संघटित होता है। निखिल शास्त्र पारावारीण विद्वत् शिरो-

मणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीने भी अपनी उक्तिमें इस अवतारका इस प्रकार वर्णन किया है। यथा—समयके प्रभावसे लुप्तप्राय निज भक्तियोगको पुनः प्रकाशित करनेके लिए जिन श्रीहरिने श्रीकृष्ण-चेतन्य नामसे अवतार धारण किया, उनके श्रीचरणारविन्दोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमश सदैव दृढ़तापूर्वक लीन होता रहे।

षट् सन्दर्भात्मक-श्रीभगवत्-सन्दर्भ-प्रथमः
तत्वसङ्दर्भः श्रीबलदेवविद्याभूषण वि-
रचिता टीका—

कृष्णेति । निमि नुपतिना पृष्ठः कर-
भाजनो योगी सत्यादि युगावतारानुकृत्वाय
“कलावपि तथा शृण्व” ति तमवधाप्याह,
कृष्णवर्णमिति । सुमेघसो जनाः कलावपि
हरि भजन्ति । कंरित्याह—संकीर्तनप्रायैर्य-
ज्ञं रचनंरिति । कीर्त्तं तमित्याह—कृष्णो
वर्णो रूपः यस्यान्तरिति शेषः । त्विषा
कान्त्यात्वकृष्ण—“शुक्लो रक्तस्तथा पीत
इदानो कृष्णतां गत” इति गर्भोक्ति-
पारिशेष्याद् विद्युद् गौरमित्यर्थः । अङ्गे—
नित्यानन्दाद्वृतो; उपाङ्गानि—श्रीवासादयः
अस्त्राणि—अविद्याच्छ्रेष्ठत्वाद् भगवन्नामानि,
पाषंदा—गदाधर-गोविन्दादयस्तः सहितमिति
महाबलित्वं व्यज्यते । गर्भवाक्ये पीत इति
प्राचीन तदपेक्षया अयमवतारः इवेत-
वाराहकल्पगताष्ट्रियशमन्वन्तरीयकलौ बो-
ध्यः । तत्रये श्रीचेतन्य एवोक्तधर्मदर्शनात् ।
अन्येषु कलिषु व्यचित् श्यामत्वेन, व्यचित्
शुकपत्राभत्वेन व्यक्तं रुक्तेः । “छन्नः
कलोयदभव” इति, ‘शुक्लरक्तस्तथा पीत’

इति 'कलावपि तथा शृण्व' ति च । ये विमृशन्ति ते सुमेधसः । छन्नत्वञ्च प्रेयसी-त्विषावृत्तवं बोध्यम्" ॥

—निमिराजके द्वारा प्रश्न करने पर श्रीकरभाजन नामके योगेश्वर सत्ययुग, त्रेता, द्वापरके युगावतारोंको कहकर सावधान करते हुए राजासे बोले कि— कलियुगावतारका वर्णन भी सुनो । सुबुद्धिमान जन कलियुगमें भी श्रीहरिका भजन करते हैं । प्रश्न—किन साधनों द्वारा भजन करते हैं ? उत्तर—संकीर्तनप्राय यज्ञों द्वारा । प्रश्न—कैसे रूपवाले हरिका भजन करते हैं ? उत्तर—कृष्णवर्ण है भीतरमें जिनके एवं बाहरकी कान्तिसे तो जो—"शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः"—इस प्रकारकी श्रीगर्गोत्तिके पारिशेष्य प्रमाणसे विजलीके समान गौरवर्णवाले हैं, उनका भजन करते हैं । जिनके अंग—श्रीनित्यानन्द एवं अद्वैताचार्यजी हैं । उपांग—श्रीवास पंडितादि हैं । अख—अविद्यारूप वनका उच्छेदन करनेमें परम समर्थं श्रीभगवन्नाम ही हैं । पार्षद—श्रीगदाधर पंडित एवं गोविन्दादि हैं । इन सबके सहयोगसे उनकी महती बलवत्ता प्रतीत होती है । श्रीगर्गचार्यजीके वाक्यमें "पीत" यह शब्द अन्य प्राचीन युगोंमें भी भगवान्के पीतवर्ण विशिष्ट अवतारको ध्वनित करता है, परन्तु यह अवतार तो श्रेतवराह कल्पके अन्तर्गत वेवस्वत मन्वन्तरके अद्वाईसवें कलियुगमें जानना चाहिये । कारण उन्हों श्रीचतन्यमें पूर्वोक्त धर्म देखे जाते हैं । अन्य कलियुगावतारोंमें तो कहीं कहीं श्यामता एवं शुकपक्षों

का सा हरा वर्ण भी व्यक्त होता है, यह शास्त्रोंमें देखा जाता है और "छन्नः कलौ यदभव" इति, "शुक्लो रक्तस्तथा पीत" इति, "कलावपि तथा शृणु" इति—इन सब श्लोकोंके तापयंका जो लोग हृदयंगम विचार करते हैं, वे ही सुमेधा जन कहे जाते हैं । इस अवतारमें "छन्नत्वं" श्री राधिकाजीकी कान्तिसे आवृत्तत्व समझना चाहिये ।

ध्येयं सदा परिभवध्नमभीष्टुदोहं

तीर्थस्त्विदं शिवविरिज्जित्वनुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाद्विषयोतं

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२६॥

त्यक्त्वा मुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं

धर्मिषु आर्यं वचसा यदगादरण्यम् ।

मायामृगं दवितयेप्सितमन्वधावद्

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥३०॥

— श्रीमद्भागवते ११५।३३-३४

श्रील विश्वनाथचक्रवर्तिकृत सारांशिङ्गनी

अयमवतारः कलियुगवर्तिनो जनान् प्रायः कृष्णरामयोर्भजनमार्गमुपदिशत्यतस्तयोः स्तुतिनती आह द्वाभ्याम् । ध्येयं ध्यातुमहं सदेति नात्र कालदेशनियम इति भावः । इन्द्रियकुटुम्बादिभिर्यः परिभवस्तिरस्कारस्तं हन्तीत्यननुसंहितं फलमभीष्टुदोहमित्यनुसंहितं तीर्थस्त्विदमिति ध्यानमात्रेण गंगादिसवंतीर्थस्नानसिद्धेः । कलौ द्रव्यदेशक्रियादिजनितं दुर्वारमपाविश्यमपि नाशंकनीयमिति भावः । तत्र सदाचारमाह,— शिवविरिच्चीति । सुख-सेव्यत्वमाह—शरण्यमिति । भक्तवात्सत्यमाह—भृत्यार्तिहमिति । न च भृत्यानां परिचर्यादि-

कमप्यपेक्षत इत्याह हे प्रणतपालेति । भृत्या-
भिमानवत्तं प्रणतिमात्रैणैव पालयतीति
भावः । भवाविधपोतमिति “त्वत्पादपोतेन
महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाविध”
मिति ब्रह्माच्युत्के भेंवाविधः कदा निस्तीर्णं
इत्यपि त्वद् भृत्यो न जानातीति भावः ।
श्लोषेण तस्या यवतारस्यात्यनेनैव स्तुतिनतो
यथा हे महापुरुष, हे परमहंस, महामुनीन्द्र,
शिवविरचित्वनुतं आचार्यहरिदासाभ्यां
स्तुतमन्वयत् समानम् ॥

अन्यैः सुदुस्त्यजा या सुरेप्सिता राज्य-
लक्ष्मीस्तां त्यक्त्वा यदिति य इत्यर्थः ।
अरण्यमगात् कि राज्यवैकल्यदर्शनेन न—
धर्मिष्ठ. आयस्य गुरोदंशरथस्य वचसा अनेन
पितृभक्तव्यमुक्तं प्रेयसोपेमवशता चाह—
दयितया सोतया ईप्सितं मायामृगं स्वर्णी-
कारं मृगं योज्ञवधावत् तस्य वन्दे । श्लोषपदे
असुभ्यः प्रारोम्योऽपि दुस्त्यजा च सुरैरपि
ईप्सितं राज्य स्वकान्तेन विराजमानत्वं यस्याः
सा च या लक्ष्मीस्तां त्यक्त्वा यत् यः
अरण्यमगात् । तत्र हेतुः—आयस्य विप्रस्य
वचसा तव सर्वमपि गाहृस्थ्यसुखं ध्वस्तं
भवतिवति यज्ञोपवीतत्रोटनपूर्वकं यत् शाप-
वचस्तेन ; धर्मिष्ठः धर्मवत्ता मध्ये अतिशयेन
श्रेष्ठो विप्रवाक्यं मा अन्यथा भवतिवति कृतं
शापं स्वीचकार इत्यर्थः । गत्वा किम-
करोदित्यत आह—मायां कलत्रपुत्रवित्तादि-
रूपां मृग्यति अन्वेष्यतोति मायामृगः संसारा-
विष्ठो जनस्तमन्वधावत् । कीदृशं दया अति-
शयेनास्तीति दयी तस्य भावो दयिता तया
हेतुना ईप्सितं स्वाभीप्सितमालिङ्गनंमिष्येण

स्वस्पर्शं दत्त्वा संसारावधी पतितमपि तं
प्रेमावधी पातयितुमिति निरूपाधि महा-
कारुण्यं द्योतितम् ॥

—अन्य ध्यक्तियोंके द्वारा कभी भी
न त्यागने योग्य तथा देववृन्दोंके द्वारा
अभिलिष्ट राज्यलक्ष्मीका परित्याग कर
तथा धर्मिष्ठ आर्य—पिता दशरथकी आज्ञा-
को शिरोधार्य कर जो बन गये । उक्त
कथनसे पितृभक्तिका निरूपण किया है ।
प्रेयसोकी प्रेमवश्यता कह रहे हैं—(दयिता)
सीताके द्वारा ईप्सित मायामृगके पीछे
जिन्होंने अनुगमन किया उनके चरणोंकी
वन्दना करता हूँ ।

श्लेषार्थं—

त्यक्त्वामु—अमु—प्राणोंसे भी दुस्त्यज
तथा देवताओं—द्वारा भी अभिलिष्ट राज्य-
को और अपने कान्तके संगमें सर्वदा
विराजमान ऐसी जो विष्णुप्रिया रूप लक्ष्मी
उसे भी त्याग कर जो (श्रीचैतन्य महा-
प्रभुजी) बनमें चले गये । बनगमनका
हेतु—ब्राह्मणका वाक्य । ब्राह्मणका कीन-सा
वाक्य—ब्राह्मणने कहा था कि ‘तुम्हारा
गृहस्थ-सुख सब नष्ट हो जाय ।’ अतः यज्ञो-
पवीतको तोड़कर जो शाप-वचन था, वह
कहीं मिथ्या न हो जाय—ऐसा विचार कर
धर्मशोलोंके बीच अतिश्छ श्रीचैतन्य महा-
प्रभुजी (शाप अंगीकार कर बन चले
गये । वहाँ जाकर वया किया ? कलत्र,
पुत्र, वित आदि रूप मायाको हूँढ़नेवाले
मृग अर्थात् संसाराविष्टजनके पीछे दौड़कर

गये (कृपा करने के लिए) । कैसे हैं वे— 'दयितयेप्सित' = दया अतिशय होनेसे वे दयी हैं । अतः दयालुताका भाव, उससे ईप्सित अर्थात् अपने आंलिंगनके व्याजसे स्पर्श-सुखको देकर संसाररूपी समुद्रमें गिरे हुए जनको प्रेमरूपी समुद्रमें अवतारण-समर्थकी मैं स्तुति करता हूँ । इस वर्णनसे उपाधिरहित, महाकारुण्यका द्योतनं कराया गया है ।

यह अवतार मनुष्यको 'कृष्णनाम' के भजन-मार्गका उपदेश देता है । अतः दो इलोकोंसे स्तुतिका उपकरण किया गया है । वह सर्वदा ध्यान योग्य है । उसके ध्यानके लिये न कालका नियम है, न देश आदिका— यह भाव है । इन्द्रिय तथा कुटुम्ब आदिसे होनेवाले परिभवका वह विनाशकारी है । ध्यानमात्रसे ही गंगादि तीर्थोंके स्नानके पुण्यकी देनेवालों है । द्रव्य-देश-क्रिया आदि से उत्पन्न होनेवाली अपवित्रताको भी वह तत्काल हूर कर देता है । —यह भाव है । इससे 'सदाचार भी कहा जाता है—शिव, ब्रह्मासे भी' वह नमनीय है । उसकी सुसेव्यता बतलाते हैं कि वह शरणपं है अर्थात् रक्षा करनेमें नियुण एवं समर्थ है । उसकी भवतवत्सलता "भृत्यातिह" —पद्ये कही जा रही है । वह भक्तोंको परिचर्या आदिको अपेक्षा नहीं करता । अतः उसे 'प्रणतपाल' कहा गया है । भृत्य अभिमान-वालेको प्रणतिमात्रसे ही पालन करनेसे समर्थ है— यह भाव है । भवान्धिपोतम्—ब्रह्माजी ने कहा है कि आपके चरणकमलोंकी नीकाका आश्रय लेनेसे भवसागर गोवत्सके पदके

समान हो जाता है । भृत्यको यह भीमालूमं नहीं होता कि भवसागरको उसने कब तेर कर पार कर लिया । इलेष अलंकारके द्वारा इस इलोकमें उस अवतरणका भी स्तवंन किया गया है; यथा—हे महापुरुष, हे परम-हंस, महामुनीन्द्र, शिव और ब्रह्मा अर्थात् शिवावतार—अद्वैताचार्य और ब्रह्मावतार—नामाचार्य हरिदास ठाकुरके द्वारा स्तुति किये गये हैं । शेष अर्थ समान ही घटित होगा ।

श्रीश्रीनायचक्रवत्तिपादरचिता

श्रीश्रीचैतन्यमतमंजूषा—

हे महापुरुष ! ते चरणारविन्दं नन्दे । की-
दृशम् ? सदा ध्येयं, परमकारुणिकत्वात्,
यतः परिभवनं संसारजन्यतिरस्कार नाश-
कम् । अभीष्टदः उहो वित्कोऽप यस्य तथा-
तम् । पुनः कीदृशम् ? तीर्थस्पदं तीर्थं
पुरुषोत्तममेत्रं तदेव आश्रदं यस्य; शिवं
क्षेमं विरचयेतोति शिवविरचिः पृष्ठोद-
रादिः । अनुत्तम् ? न विद्यते नुतं स्तुति-
यस्य, अथवा न विद्यते नुतं स्तुतं यस्मात्,
एतदेवे तु न विद्यते नुतं स्तुतं यस्मात्
भृत्यान्तिहम् । हे प्रणतपाल ! अतो भवान्धिपोतम् । त्यक्तवेति—आर्यः संन्यासोपदेष्टा तस्य
ववसा भवान् अरण्यं यदगात्, कि कृत्वा
सुदुस्त्यजा सुरेष्वपि ईप्सितं वांछितं राज्यं
शोभमानत्वं यस्याः सा सुरेप्सितराज्या सा
च सा लक्ष्मीनाम पत्नी तां त्यक्तवा राज-
तीति राट् तस्य भावो राज्यं शोभमान-
त्वम् । भवान् कीदृशम् ? धर्मिष्ठः धर्म-

स्थितः । अरण्यं गत्वा किमकरोदित्याह—
ईप्सितं मनोऽभिलिषितं नीलाद्रिमन्वधावत् ।
कीदृशम् ? मायया अमृगममृग्यं निर्गुण-
मित्यर्थः । (भा० ११२४।२५) “मन्त्रिकेतनं
तु निर्गुणम्” इति वक्ष्यमाणत्वात् । दया
अस्यास्तीति दयी, मायादित्वादिन् ,अथवा
दयनं दयः सोऽस्यास्तीति तथा तस्य
भावो दयिता तया विशिष्टः परमकृपालु-
रित्यर्थः ।

हे पुरुषोत्तम ! मैं आपके श्रीचरणार-
विदोंकी बन्दना करता हूँ । वह परम
कारुणिक होनेसे सदैव सबके ध्यान करने
याम्य है एवं संसारसे उत्तम तिरस्कार-
का नाशक भी है और उस चरणारविन्द-
का अन्तःकरणसे विचार-विमर्श भी अभि-
लिषित वांछाका पूरक है । तीर्थेष्ट श्री-
जगन्नाथसेवा ही उसका आस्पद अर्थात्
निवासस्थान है, और वह चरणारविन्द-
शिव अर्थात् कल्पाणको रक्षा करता है ।
अतएव सर्वसाधारणके द्वारा नमस्कृत है,
अथवा शिवावतार श्रीअद्वैताचार्य एवं
ब्रह्मावतार नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर
द्वारा नमस्कृत है, अतएव शरणागतवस्त्व
है । भक्तिप्रिय सेवकोंकी सारी पीड़ाएँ
हर लेता है । हे प्रणतजनरक्षक ! अतएव
आपका वह चरणारविन्द अनायास ही
संसारसागरके पार जानेके लिए जहाजके
समान है ।

आय, संन्यासमार्गोपदेष्टा अर्थात् एक-
वार श्रीमन् महाप्रभुजो निजपार्षदों सहित
श्रीवासपडितके भवनमें सकीर्तन कर रहे

थे । उसी समय एक ब्राह्मणने भी
संकीर्तनमें सम्मिलित होने की चेष्टा की,
परन्तु द्वार बन्द होनेके कारण भीतर न जा
सका । अतः कुपित होकर उसने अपने
यजोपवीत को तोड़ते हुए शाप दिया कि
'तुम्हारा गाहंस्थ सांसारिक मुख नष्ट हो
जाय ।' अतः ब्रह्मण्यदेव श्रीमन् महाप्रभुने
उस विप्रकी बातको सत्य करनेके लिये
संन्यास ग्रहण कर श्रोवृन्दावनकी यात्रा की
थी (चंतन्य चरितामृत—११७।६०—६४) ।
प्रश्न—क्या करके बनको पधारे थे? उत्तर—
त्यक्त्वा—त्यागकर । प्रश्न—क्या त्यागकर?
उत्तर—देवता भी जिसकी शोभाकी विद्यमानता
की सदैव अभिलाषा करते हैं, ऐसो सुदुस्त्यज
श्रीलक्ष्मीरूपिणी अपनी पत्नीका त्याग कर ।
प्रश्न—आप स्वतः कैपे हो ? उत्तर—
धर्मिष्ट, अर्थात् निज अहैतुकी भक्तिरूप
परम धर्मके प्रचारमें निष्ठ हो । प्रश्न—बनमें
जाकर आपने क्या किया ? उत्तर—स्वाभि-
लिषित श्रीनीलाचलके प्रति दौड़कर चले
आये । प्रश्न—वह नीलाचल, अर्थात् पुरु-
षोत्तम-सेवा कैसा है ? उत्तर—सायामृगम—
प्राकृत गुणरहित निर्गुण है । तात्पर्य—
माया उसको दूढ़ नहीं सकती । “मन्त्रिकेतनं
तु निर्गुणम्” (भा. ११२४।२५) इस प्रमाण-
से वह निर्गुण है । आप परम दयालु हो
अतः १८ वर्षतक श्रोपुरुषोत्तम-सेवामें अखंड
वास कर जीवमात्रको भक्तिका भंडार
लुटाते रहे हो, तो प्रभो ! उन्हों दयामय
आपके श्रीचरणारविन्दोंकी मैं बारंबार
बन्दना करता हूँ ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥३१॥

श्रीमद्भगवद्गीतायाम् ४८

युगावतारकी प्रामाणिकतामें अर्जुनके प्रति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका कथन भी इस प्रकार है कि—साधुओंको रक्षाके लिए, दुष्टोंके विनाशके लिए एवं धर्मकी संस्थापनाके लिये मैं युग-युगमें अवतार लेता हूँ । तात्पर्य यह है कि प्रारंभमें ही कलिकालके अकाण्डताण्डव नृत्यसे पाखण्डपराण गौडदेशके साधुजन जब भूतिप्रधान परम धर्मकी हानिसे महान् दुःखित होने लगे और दुष्टोंका बोलबाला देख अद्वैताचार्य प्रभृति साधुओंकी करुण पुकारको सुनकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र ही गीराग रूपमें श्रीमायापुर-नवद्वीपमें अवतार लेना पड़ा । इस अवतारमें एक विशेषता यह और है कि अन्य अवतारोंकी भाँति आयुध-विशेष धारण न करके केवल निज हरिनामाख्यसे ही दुष्टोंका विनाश, साधुओंकी रक्षा, एवं परम धर्म अर्थात् “स वै पुंसां परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति” (भा. १२१६) ऐसे कहे गये प्रेमलक्षणा भक्तिरूप धर्मकी संस्थापना भी अनायास कर दिखाई ।

अहमेव द्विजश्चेष्ठो नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।
भगवत्भक्तरूपेण लोकं रक्षामि सर्वदा ॥३२॥

(आदिपुराणे एवं वृन्दावारदीयपुराणे)

भगवान् कहते हैं कि—मैं ही नित्य प्रच्छन्नविग्रह ब्राह्मणश्चेष्ठ होकर भगवद्भक्तरूपसे निज भक्तजनोंकी सदा रक्षा

करता हूँ । यह सब श्रीगौरांगदेवमें ही संघटित होता है ।

कलिना दह्यमानानामुद्धाराय तनूभृताम् ।
जन्म प्रथमसंन्ध्यायां भविष्यति द्विजालये ॥३३॥

(कूर्मपुराणे)

कलिना दह्यमानानां परित्राणाय तनूभृताम् ।
जन्म प्रथमसंन्ध्यायां करिष्यामि द्विजातिष्ठु ॥३४॥

(गरुडपुराणे)

कलिरूप दावानलसे जलते हुए भक्तों के उद्धारके लिए कलिकी प्रथम संन्ध्यामें भूतलवर ब्राह्मणोंके कुलमें अवतीर्ण होऊँगा ।

अहं पूर्णो भविष्यामि युगसन्धी विशेषतः ।
मायापुरे नवदीपे भविष्यामि शाचीमुतः ॥३५॥

कले: प्रथमसंन्ध्यायां लक्ष्मीका तो भविष्यति ।
दारुद्धारसमीपस्थः संन्यासी गौरविग्रहः ॥३६॥

यद गोपीकुचकुं भसंन्ध्रमभरारभेण संवर्धितं
यद्वा गोपकुमारसारकलया रवेसुभंडीकृतम् ।
यद वृन्दावनकानने प्रविलसच्छ्रीदामदामादिभिस्तप्रेमप्रकटं चकार भगवान् चैतन्यरूपः

प्रभुः ॥३७॥

यो रेमे सहबल्लबी रमयते वृन्दावनेऽर्हनिर्णयः
कंसं निजधान कौरवरणे यः पाण्डवानां सखा ।

सोऽयं वैष्णवदग्निष्ठतुजः संन्यासदेशः स्वर्वनिःसन्देहमूपागतः क्षितितले चैतन्यरूपः
प्रभुः ॥३८॥

(गरुडपुराणे)

मैं कलियुगको प्रथम संन्ध्यामें श्रीमायापुर-नवद्वीपमें शाचीनन्दन रूपसे पूणवितार धारण करूँगा ।

कलियुग की प्रथम सन्ध्यामें पड़ैश्वर्य परिपूर्णं लक्ष्मीकान्तं भगवान् ही दारुण्यं श्रीजगद्ग्राथजीके समीप श्रीगौरांग-रूप धारण कर सन्यास वेषमें अवतीर्ण होंगे । गुरुपुराण की यह उक्ति भी श्रीकृष्णचैतन्यदेवका बोध कराती है, कारण आपकी ही प्रथम पत्नीका नाम लक्ष्मी था । पुरुषोत्तम धेशके समीप आपका ही अवस्थान प्रसिद्ध है ।

श्रीकृष्णावतारमें जिस विशुद्ध प्रेमकी वृद्धि गोपियोंके साथ रासलीला रचकर की थी, एवं श्रीवृन्दावनमें क्रीड़ापरायण, सुदामा, श्रीदामा, मधुमञ्जल, स्तोककृष्ण, दाम प्रभृति सखाओंके सहित गोपकुमारलीलाका सार स्वरूप प्रगट करते हुए मल्ललीला, आंब मिचौती आदि क्रीडाके रंगस्थलमें जिस प्रेमको मुव्यक्त कर दिखाया था, उसी विशुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिमय प्रेमको प्रभुने श्रीकृष्ण-चैतन्यरूप धारण कर नवद्वीप-पुरुषोत्तम आदि धेशोंमें प्रगट कर दिखाया था ।

जि । प्रभुने श्रीकृष्णचन्द्ररूपमें श्रीवृन्दावन धाममें गाँपियोंके साथ रासलीला करते हुए अनेक क्रीडाएँ को एवं जिन्होंने कंसको मार डाला, कौरवोंके संयाममें जो पांडवोंके सखा बनकर पार्थसारथि कहलाये, निःसन्देह वे ही अघटित-घटना-पटीयान् स्वयं-प्रभु सन्यास वेष धारण कर वेणु-दण्डसे भुज सुशोभित कर पृथिवीतलमें श्रीकृष्णचैतन्यरूपसे पधारे ।

नामसिद्धान्तसंपत्ति प्रकाशनपरायणः ।
ववचित् श्रीकृष्णचैतन्यनामा लोके भविष्यति ॥३६॥

(देवीपुराणे उमामहेश्वर संवादे)

श्रीमहादेवजी पार्वतीसे बोले निखिल कोटिब्रह्माण्ड नायक प्रभु ही ववचित् “कहों तात्पर्य श्रीनवद्वीपमें प्रकट होकर” भगवत्तामके सिद्धान्तको संपत्तिका प्रकाश करनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्य नामसे लोकमें प्रसिद्ध होंगे ।

सत्ये दैत्यकुलाधिनाशसमये सिंहोद्धर्मत्यर्कृतिः
स्त्रेतायां दशकन्धरं परिभवत् रामेति नामाकृतिः
गोपालान् परिपालयन् ब्रजपुरे भारं हरन् द्वापरे
गौरांगः प्रियकीर्तनः कलियुगे चैतन्यनामा प्रभुः ॥४०॥

(नृसिंहपुराणे)

सत्ययुगमें जो प्रभु हिरण्यकशिपुका विनाश करनेके समय नृसिंहाकृतिसे अवतीर्ण हुए, त्रेतायुगमें रावणका तिरस्कार करते हुए परम मनोहर राम नामक श्रीविश्रहसे प्रगट हुए और द्वापरमें पृथ्वीका भार उतारने के लिये गवालबालोंको रक्षा करते हुए त्रिभुवन मोहनरूपसे श्रीव्रजधाममें विराजे, वे ही प्रभु कलियुगमें कीर्तनप्रिय श्रीगौरांगदेव श्रीकृष्णचैतन्य नामसे विख्यात होंगे ।

यत्र योगेश्वरः साक्षाद् योगिचिन्त्यो जनादेनः ।
चैतन्यवपुरास्ते वै सान्द्रानन्दात्मकः प्रभुः ॥४१॥
कले: प्रथमसन्ध्यायां गौरांगोऽहं महीतले ।
भागीरथीतरे रम्ये भविष्यामि शब्दीसुतः ॥४२॥

(पश्चपुराणे उत्तरखण्डे वैकुण्ठवरणे ।)

जिस दिव्यातिदिव्य वैकुण्ठमें योगीजनके चिन्तनीय, सान्द्रानन्दात्मक, जनादेन भगवान् साक्षात् योगेश्वर चैतन्यविश्रहसे विराजमान रहते हैं, वे ही वैकुण्ठाधिपति कहते हैं कि—

मैं कलिकी प्रथम सन्ध्यामें परम रमणीय भागीरथीके तीर पर भूतलमें श्रीशचीमातासे प्राकट्य धारण कर श्रीगोरांगरूपसे अवतीर्ण होऊँगा ।

अहमेव कलौ विप्र नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।
भगवद्भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा ॥४३॥
दिविजा भुवि जायध्वं जायध्वं भक्तरूपिणः ।
कलौ संकीर्तनारंभे भविष्यामि शचीसुतः ॥४४॥

(बृहन्नारदीयपुराणे)

हे विप्रवर ! कलियुगमें मैं अपने स्वाभाविक इयामल विग्रहको श्रीमती राधिकाजीके भाव एवं कान्तिसे आच्छादित-कर भक्तरूपसे भक्तजनोंकी श्रीहरिनामरूप परमाख्यसे सदा-सर्वदा रक्षा करता हूँ । अतः हे देवताओं ! तुम सबसे भी मेरा यही कहना है कि तुम सब भी आ पृथ्वीलोकमें भक्तरूपसे प्रगट हो जाओ, कारण कि कलियुगमें नामसंकीर्तनारंभके समय मैं भी श्रीशचोपुत्ररूपसे प्रकट होऊँगा ।

कलैः प्रथमसन्ध्यायां गौरांगोऽहं महीतजे ।
भीरथीतटे भूम्नि भविष्यामि सनातनः ॥४५॥

(बृहपुराणे)

मैं सनातन ब्रह्म ही कलि की प्रथम सन्ध्यामें विस्तृत भागीरथीके तटपर श्रीगोरांगरूपसे प्रगट हो भूतलमें विख्यात होऊँगा ।

आनन्दाश्रुकलारोमहर्षपूर्णं तपोधनं ।
सर्वं मामेव द्रक्ष्यन्ति कलौ सन्ध्यासिरूपिणम् ॥४६॥

(भविष्यपुराणे)

हे तपोधन ! कलियुगमें सब भक्तजन मुझको आनन्दाश्रुकलाओंसे एवं रोमहर्षसे परिपूर्ण वपु सन्ध्यासवेषमें देखेंगे । तात्पर्य— ये सब प्रेमके अष्ट सात्त्विक विकार सन्ध्यासरूपधारी श्रीगोरांगहरिमें ही अनुभूत हुए हैं, अतः उसी अवतारका सकेत है ।

शान्तात्मा लम्बकण्ठस्त्रं गौराङ्गस्त्रं सुरादृतः ॥४७॥

(अग्निपुराणे)

प्रशान्तात्मा, लम्बे कण्ठवाले और देवताओंसे वेष्टित गौराङ्ग रूपमें अविभूत होंगे ।

सूपजितः सदा गौरः कृष्णो वा वेदविद् द्विजः ॥४८॥

(सोरपुराणे)

वेदज्ञ ब्राह्मणके रूपमें अवतीर्ण गौर अर्थात् कृष्ण सदा-सर्वदा पूजित होते हैं ।

मुष्डो गौरः सुदीर्घाङ्गस्त्रिलोतस्तीरसंभवः ।
दयालुः कीर्तनप्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥४९॥

(मत्स्यपुराण)

शुद्धो गौरः सुदीर्घाङ्गो गङ्गातीर-समुद्रबः ।
दयालुः कीर्तनप्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥५०॥

(वायुपुराण)

हे देवताओं ! कलियुगमें मैं गंगाजीके तीरस्थ श्रीमायापुर-नवदीपमें प्रगट होकर सर्व-साधारण पापी-तापी जीवोंको नाम संकीर्तनकी परिपाठी सिखाऊँगा । उस समयके जीवोंकी हृष्टिमें मैं मुण्डित, गौरवर्णविशिष्ट, आजानुलंबित भुजादिसे

दीर्घाङ्गि एवं पात्रापात्रविचाराधिकार भूमिका से परे उच्चकोटि के परम दयालुरूपसे अनुभूत होऊँगा ।

गोलोकं च परित्यज्य लोकानां त्राणकारणात् ।

कलौ गौरांगरूपेण लीलालावण्यविग्रहः ॥५१॥
(वामपुराणे)

मैं अनेक लीलाओंके संपादनके लिये परम मनोहर विग्रह धारण करनेवाला होकर भी कलियुगमें भक्तजनोंकी रक्षाके हेतु गोलोकको त्यागकर भी श्रीगौरांगरूपसे अवतीर्ण होऊँगा ।

अहमेव द्विजश्चेष्टो लीलाप्राचृयंविग्रहः ।

भगवद्भूत्तरूपेण लोकंरक्षामि सर्वदा ॥५२॥
(वामपुराणे)

लीलामात्रसे अनेक रूप धारण करनेवाला मैं भी कलिकालमें ब्राह्मणश्चेष्ट बनकर भगवद्भूत्तरूपसे कलिदावानलसे भक्तजनोंकी सदैव रक्षा करता हूँ ।

कलिघोरतमरूपान् सर्वनाचारवर्जितात् ।
शाचीगर्भं च संभूय तारयिष्यामि नारद ॥५३॥

(वामपुराणे)

हे नारद ! कलिकाल के अज्ञानरूपी घोर अनधिकारसे आच्छन्न, आचार-विचार वर्जित सभी जनोंको मैं श्रीशच्चीदेवीसे प्रगट होकर संसारसागरसे पार कर दूँगा ।

अहमेव ब्रचिद्ब्रह्मान् संन्यासाश्रममाश्रितः ।
हरि भक्ति ग्राहयामि कलौ पापहतान्नरात् ॥५४॥

उपपुराणे

चंतन्यचरितामृते १ ३ ८२

श्रीकृष्ण व्य सदेवसे कहते हैं—हे व्यास-देव ! पाप पीड़ित जनों को मैं (स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण) ही ब्रचिद् “गुम-

रूपेणावतीर्ण ” इति कवाचिदर्थः—अर्थात् कहीं गुमरूपसे अवतार धारण कर संन्यास आश्रम का अवलंबन कर कलियुगमें हरिभक्तिको ग्रहण कराता हूँ ।

पौराणमास्थां फालगुनस्य फलगुनोक्त्वयोगतः ।

भविष्य गौररूपेण शचीगर्भं पुरन्दरात् ॥५५॥

स्वर्णदीतीरमास्थाय नवद्रीपे जनाश्रये ।

तत्र द्विजकुलं प्राप्नो भविष्यामि जनालये ॥५६॥

भक्तियोगप्रदानाय लोकस्थानुप्रहाय च ।

संन्यासरूपमास्थाय कृष्णचंतन्यनामधृक् ॥५७॥

येन लोकस्य निस्तारस्तत् कुरुठ्वं ममाज्ञया ।

धरित्री भविता चाऽभीर्मर्येव द्विजदेहिना
(वायुपुराणे)

भगवान् स्वयं कहते हैं—हे देवताओ !

उत्तरा फालगुनी नक्षत्रके योगसे युक्त फालगुन गात्रकी दूर्णिगाके दिन द्विजेन्द्र पण्डित श्रीजगत्राथ (मिथु पूरन्दर) द्वारा श्रीशच्ची माताके गर्भसे गौराङ्ग रूपसे अवतीर्ण होऊँगा ।

गङ्गा तटका आश्रय लेकर विराजमान भक्तजनोंका जो प्रधान स्थान नवद्रीप है, वहाँ पर मैं उत्तम ब्राह्मण कुलका आश्रय लेकर भक्तोंके स्थानमें आविर्भूत होऊँगा ।

उस समय भक्तियोगका प्रदान करनेके लिए, जनमात्रको अनुग्रहीत करनेके लिए संन्यासवेष धारण कर श्रीकृष्णचंतन्य नामसे विरुद्धात होऊँगा ।

अतः जिस प्रकार संसारक निस्तार हो उसी प्रकार तुम सब मेरी आजाका पालन करो । ब्राह्मण शरीरधारी मेरे द्वारा हा पृथिवी भयरहित हो जायगी ।

निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते ।

ततः प्राविरसौ विप्रः ब्रचिल्लोके भविष्यति ॥५६॥

(वायुपुराणे)

जिस समय संसार वेदशास्त्रोंके स्वाध्याय से रहित, यज्ञ-यागादिमें प्रयुज्यमान वषट्कार, स्वधा, स्वाहादिसे वर्जित हो जायगा तब कहीं यही पुराण-पुरुषोत्तम प्रणट हो जायेगे। "छन्नः कलौ यदभवः" की भाँति यहाँ पर भी छन्नावतार की प्रतीति के लिये कई श्रोकोंमें वचित् वचित् शब्द आता है, यह जानना।

अवतीर्णे भविष्यामि कलौ निजगणैः सह ।
शक्तोगम्भं नवद्वीपे स्वधुं नीपरिवारिते ॥ ६० ॥
अप्रकाश्यमिवं गुह्यं न प्रकाश्यं बहिषुं ले ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं भक्तं भक्तिप्रदं स्वयम् ॥ ६१ ॥
मम्मायामोहिताः केचिन्न ज्ञास्यन्ति बहिषुं लाः ।
ज्ञास्यन्ति भद्रक्तियुक्ताः साधवो यासिनोऽमलाः ॥ ६२ ॥

कृष्णावतारकाले याः स्त्रियो ये पुरुषाः प्रियाः ।
कलौ तेऽवतरिष्यन्ति श्रीदामसुबलादयः ॥ ६३ ॥
चतुःषट्मिंहान्तस्ते गोपा द्वावश बालकाः ।
धर्मसंस्थापनार्थाय विहरिष्यामि तंरहम् ॥ ६४ ॥
काले नष्टं भक्तिपथं स्थापयिष्याम्यहं पुनः ।
गच्छन्तु भुवि ते पुत्राः जायन्ता भक्तरूपिणः ।
घर्मसंस्थापनं काले कुर्वन्तु ते ममाक्षया ॥ ६५ ॥
कृष्णश्चेतन्यगौरांगी गौरचन्द्रः शचीसुतः ।
प्रभुगौरो गौरहरिनामानि भक्तिदानि मे ॥ ६६ ॥
स्वर्णदीतीरमाश्रित्य नवद्वीपे द्विजालये ।
संप्रदातुं भक्तियोगं लोकस्थानुश्रहाय च ॥ ६७ ॥
य एव भगवान् कृष्णो राधिकाप्राणवल्लभः ।
सुष्ठ्यादौ स जगन्नाथो गौर आसीन्महेश्वरि ॥ ६८ ॥

(अनन्त संहितायाम्)

श्रीशकरजी पांचतीसे बोले—हे महेश्वरि ! सृष्टिके आदिमें जिन प्रभुका नाम श्रीजगन्नाथ था और जो द्वापरमें श्रीराधिकाप्राणवल्लभ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रूपमें अवतोर्ण

हुए थे, वे ही पुराण पुरुषोत्तम प्रभु प्रेमलक्षणा भक्तियोगका प्रदान करने एवं संसारका कल्याण करनेके लिये गंगा तीरस्थ नवद्वीप घाममें किसी विशिष्ट ब्रह्मणके घर गौरांग-रूपसे अवतीर्ण होंगे। वे ही प्रभु ब्रह्माजीके प्रति कहते हैं कि—हे ब्रह्मन् ! मैं कलियुगमें गंगाजीसे घिरे हुए नवद्वीपमें अपने पांचदों सहित शचीमाताके हृदयप्रांगणमें अवतीर्ण होऊंगा। यह रहस्य अप्रकाशनीय है। अतः किसी बहिषुंख जनके सामने नहीं प्रकाशित करना। भक्तसद्वा नामवाले, अनपितवरी भक्तिके देनेवाले, स्वयं भक्तरूपसे परिदृश्य-मान होनेवाले, मेरे इस भक्तावतारको मायासे मोहित कुछ बहिषुंख लोक नहीं जान सकेंगे। किन्तु मेरी भक्तिसे युक्त, सर्वस्व मेरे लिये भर्तुं करनेवाले निर्मल माधुजन मुझे भलीभाँति जान लेंगे। श्रीकृष्णावतारके समयमें जो मेरे परम प्रिय नर-नारी-आबाल वृद्धजन हैं, वे सभी श्रीदाम सुबल आदिक कलियुगमें मेरे साथ अवतीर्ण होंगे। वे ही सब जन कुछ चौपठ महान्त और द्वादश गोपालोंके नामसे विख्यात होंगे। मैं उन सबके साथ ही विहार करूंगा। धर्मकी संस्थापनाके लिये कलियुगमें नष्टप्राय भक्ति-मार्ग की पुनः सुट्ठ संस्थापना करूंगा। अतः तुम्हारे सनकादिक चारों पुत्र भी भूमि पर चले जाय और यहाँ भी मेरी आज्ञासे भक्तरूपमें अवतीर्ण होकर समयानुसार धर्मकी स्थापना करें। और कृष्ण, चौतन्य, गौरांग, गौरचन्द्र, शचीसुत, प्रभु, गौर, गौरहरि इत्यादि ये मेरे सब नाम जापकोंको भक्ति देनेवाले हैं।

(क्रमशः)

प्रचार-प्रसङ्ग

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीका तिरोभाव-महोत्सव

गत ३० अग्रहायण, १६ दिसम्बर, बुधवारको विश्वव्यापी गौडीय मठोंके मूल-प्रतिष्ठाता जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी तिरोभाव-तिथि समितिके सभी मठोंमें पाठ, कीर्तन, वक्तृताके माध्यमसे पालित हुई है। उक्त दिवस शामको श्रीकेशवजी गौडीय मठमें आयोजित विशेष सभामें श्रीकृष्णबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीसुबलसखा ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रील प्रभुपादजी की विविध शिक्षाओं, उनके अतिमर्त्य जीवनके विविध पहलुओं आदि पर प्रकाश डाला। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने बड़ा ही मार्मिक एवं हृदयग्राही भाषण दिया। महामंत्र कीर्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

श्रीवसन्त-पञ्चमीका अनुष्ठान

गत १७ माघ, ३१ जनवरी रविवारके दिन श्रीकृष्णकी वसन्त पंचमी बड़े समारोह से मनायी गई। इस दिन भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्द्धनमें रास-लीला की थी। इसी दिन श्रीसरस्वती-पूजा की जाती है। इसी तिथिमें श्रीगौरशक्ति श्रीविष्णुप्रियाजी, श्रील रघुताथ-दास गोस्वामी एवं श्रीरघुनन्दन ठाकुर आविर्भूत हुए थे। इसी तिथिमें महामहोपाध्याय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अप्रकट हुए थे। इस दिनके विशेषसभामें इन सब महाजनोंकी शिक्षा, जीवन-चरित्र तथा अलौकिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया।

श्रीअद्वैत सप्तमी और श्रीनित्यानन्द त्रयोदशीका अनुष्ठान

गत १९ माघ, २ फरवरी, मंगलवारको श्रीमहाविष्णुके अवतार श्रीश्रील अद्वैताचार्य प्रभुको एवं २५ माघ, ८ फरवरी बुधवारको श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुकी आविर्भाव-तिथि समितिके सभी मठोंमें उपवास, पाठ, कीर्तन, प्रवचनके माध्यमसे मनायी गई है। उक्त दोनों दिन ही श्रील अद्वैताचार्य प्रभु एवं श्रील नित्यानन्द प्रभुके संबन्धमें रचित महाजन पदावलियोंके कीर्तनके पश्चात् दोनोंके तत्त्व एवं चरित्र पर विशद प्रकाश डाला गया। श्रीकेशवजी गौडीय मठमें शामको आयोजित विशेष सभाओंमें श्रीकृष्णबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने दोनों महाजनोंके तत्त्व, चरित्र एवं शिक्षाओं पर प्रकाश डाला। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया। महामंत्र कीर्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

॥ श्रीश्रीगुरुगौराज्ञों जयतः ॥

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदिया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरिकी निखिल भुवनमञ्जलमयी आविर्भाव-तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी २१ फाल्गुन, ६ मार्च, शनिवारसे २७ फाल्गुन, १२ मार्च, शुक्रवार पर्यन्त समाहकालब्यापी एक विराट महोत्सव का अनुष्ठान होगा । इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभृति विविध भक्त्यज्ञ याजित होंगे ।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीप धामके अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्त्वस्थान-माहात्म्य-कीर्तन करते हुए सोलह-कोसकी परिक्रमा होगी । गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाढ़ी एवं श्रीधाम मायापुरमें मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके ५श्रात् संघ्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आनेको सुव्यवस्था की गई है ।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उस भक्ति-अनुष्ठानमें सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्गको परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे । इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलक्ष्य कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्यद्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे । इति १५ फरवरी १९७१ ई० ।

शुद्धपत्र कृपालेश-प्रार्थी—

“सम्प्रवृन्द”

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

दृष्टव्यः—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त वामन महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकानेपर निखें या भेजें ।